www.krishipravahika.vitalbiotech.org

कृषि प्रवाहिका: ई-समाचार पत्रिका

e-ISSN: 2583 – 0430

कृषि-प्रवाहिका: ई-समाचार पत्रिका, (2022) वर्ष 2, अंक 10, 5-9

Article ID: 222

ग्रामीण नगरीय सातत्य : एक संकल्पना

जय प्रताप सिंह, डॉ. अतुल कुमार यादव

[1]सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र), श्री वार्ल्य महाविद्यालय अलीगढ़, राजा महेंद्रप्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़

[2]एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, ए.के.(पीजी) कॉलेज शिकोहाबाद (उ.प्र.)

सातत्य का अर्थ है निरंतरता एवं ग्रामीण-शहरी सातत्य का अर्थ है "गाँव से शहर तक निरंतरता। इस निरंतर पैमाने का एक छोर गाँव है तो दूसरा शहर है। ये दोनों सामाजिक संरचनाएँ निरंतर परस्पर क्रिया करती रहती हैं। यही कारण है कि ग्रामीणों पर शहर के जीवन का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है एवं गांवों के कुछ सांस्कृतिक लक्षण शहरों में विकसित होते हैं। सातत्य यह भी दर्शाता है कि विकास गाँव से शहर की ओर होता है। समय के साथ, गाँव कस्बों में और कस्बे शहरों में बदल जाते हैं।

सामान्यतः ग्रामीण और शहरी समाज को एक दूसरे के पूर्णतः विपरीत माना जाता हैं। परंतु वर्तमान समय में अनेकों स्थानों पर इन दोनों ही के तत्व पाए जाते हैं। आज संचार नेटवर्को और परिवहन व्यवस्था सुदृढ़ होने से अधिकतर स्थान एक दूसरे से जुड़ते जा रहे हैं। अब ग्रामीण और शहरी सातत्य विद्यमान है जिसमें आगरा जैसे स्थान भी निर्धारित किए जा सकते हैं।

विभिन्न समाजशास्त्रीय अध्ययनों में, यह पूर्व से ही अध्ययन किया गया था कि शहरी और ग्रामीण समाजों के बीच स्पष्ट अंतर होता है परंतु बाद के चरण में कई समाजशास्त्रियों के द्वारा यह सुझाव देना प्रारंभ किया कि जनसंख्या को एक सामान्य ग्रामीण व शहरी के रूप में विभाजित करना पर्याप्त नहीं है। अत: धीरे-धीरे, यह स्पष्ट हो गया है कि यह द्विभाजन अपर्याप्त एवं बहुत ही सरल है जिसे बाद में ग्रामीण नगरीय क्षेत्र को विभिन्न सोपानों में वर्गीकृत कर दिया गया। जिसे चित्र संख्या 1 में दर्शाया गया है।

चित्र संख्या : 1 : ग्रामीण नगरीय सातत्य के विभिन्न चरण

समाजशास्त्र में रॉबर्ट रेडफील्ड (1930) ने लोक, ग्रामीण और शहरी सातत्य की अवधारणा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने छोटे गांव से लेकर बड़े शहरों तक एक निरंतरता की संकल्पना का निर्माण किया। उन्होंने बताया कि अधिक शहरी का अर्थ होता है कि वहां की जनसंख्या अधिक धर्मनिरपेक्ष, अधिक व्यक्तिवादी एवं अधिक श्रम विभाजन के

स्वरूप को धारण किये हुए है। शहरीकरण की तीव्र प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों (शहरी केंद्रों के निकट) में तकनीकी रूप से विकसित नए उद्योगों की स्थापना ने ग्रामीण जीवन पर बहुत प्रभाव डाला है। आधुनिक औद्योगिक लक्षणों के प्रसार में काफी कमी आई है, एवं अब कहा जा सकता है कि दोनों के मध्य अंतर न के बराबर रह गया है। इस प्रकार, ग्रामीण और शहरी अदृश्य सांस्कृतिक सीमाओं के मध्य अंतर की रेखा को खींचना अब मुश्किल बना दिया है। इसलिए, सीमांत क्षेत्र दोनों समाजों के सांस्कृतिक लक्षणों के समामेलन और निरंतरता को दर्शाते हैं।

भारत में, पिछले तीन दशकों के दौरान परिवहन और सड़क संचार के विकास ने बहुत ही कम समय में दूरस्थ आदिवासी क्षेत्रों, गांवों और शहरी केंद्रों को तेजी से जोड़ दिया है। नए व्यवसायों एवं आधुनिक शिक्षण संस्थानों ने ग्रामीण क्षेत्रों के व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। परिणामस्वरूप गांवों से शहरों की ओर प्रवास हुआ। यह प्रवास आदिवासी क्षेत्रों, गांवों और शहरों के बीच के अलगाव को कम करता है। दूर के जनजातीय क्षेत्रों में नगरवाद, एवं शहरों में जनजातीय व ग्रामीण संस्कृति के लक्षण दिखाई देते हैं। आज गांवों व शहरी समाज दोनों के बीच के अंतर को मतभेदों के संदर्भ में नहीं देखा जाना चाहिए। वे एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत नहीं हैं बल्कि वे एक ही सातत्य के अंग हैं।

ग्रामीण और शहरी समाज की निरंतरता के संबंध में भारत में 60 के दशक के अंत और 70 के दशक की शुरुआत में बहुत सारे साहित्य प्रकाशित हुए। ग्रामीण शहरी निरंतरता के बारे में बहस 1938 में लुईस वर्थ के "शहरीवाद के रूप में जीवन के एक तरीके" के प्रकाशन के साथ शुरू हुई। इस लेख को आरई पहल नामक एक अन्य अमेरिकी समाजशास्त्री ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने "शहरी समाजशास्त्र का अध्ययन" नामक एक पुस्तक लिखी। इसी तरह, डीएफ पॉकॉक, एक ब्रिटिश मानवविज्ञानी और ऑस्कर लुईस भी ग्रामीण-शहरी सातत्य के मूल्यों की सदस्यता लेते हैं। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री एमएन श्रीनिवास ने तर्क दिया है कि ग्रामीण-शहरी सातत्य कुछ और नहीं बल्कि परिवर्तन के विरोधाभास का प्रतिनिधित्व करता है। मिल्टन सिंगर इसे पूर्वी विकासशील राष्ट्र के संदर्भ में विभाजन की गंभीर समस्या का एक उपोत्पाद कहते हैं। वाई. सिंह इसे "प्रतिमान पुनरावृत्ति" कहते हैं। प्रो. वाई. सिंह ने अपनी पुस्तक "भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण" में तर्क दिया है कि गांव और शहर परस्पर जुड़े हुए हैं एवं ग्रामीण समाज की संरचनात्मक विशेषताएं शहरी समाज में पूरी तरह से अनुपस्थित नहीं हैं। अतः इस मामले में यह माना जा सकता है कि गांवों में भी शहरी संस्कृति कुछ हद तक पायी जाती है। ग्रामीण-नगरीय सातत्य की दो आवश्यक विशेषताएं हैं:

(क) ग्रामीण समाज और शहरी समाज के बीच पारंपरिक द्विभाजन पर असहमति है।

(ख) ग्रामीण और शहरी समुदाय के बीच कुछ अंशों का ही अंतर है।

ग्रामीण-शहरी सातत्यक (सातत्य-काल) - 'ग्रामीण और शहरी समाज दो अलग अलग रूप है' - यह विचार तब जाँच का विषय बन गया, जब यह पाया गया कि शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण एवं ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी लक्षण विद्यमान थे। इसके अलावा ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के लक्षणों को दो भिन्न दुनियाओं के रूप में वर्णित करना अमान्य है, क्योंकि इन दोनों के मध्य लोगों, विचारों और वस्तुओं का नेटवर्क और प्रवाह विद्यमान है। परिणामस्वरूप, एक सतत् अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया हो रही है। यह मान लिया गया कि गांवों और शहरों की जीवन पद्धतियों में हमेशा घनिष्ट संबंध रहा है, इसलिए अब यह नहीं माना जाता कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषताएं अलग अलग होती है, बल्कि अब माना जाता है कि इन दोनों में इनकी विशेषताओं का सातत्यक भिन्न-भिन्न परिमाणों में पाया जाता है। वास्तव में यह ग्रामीण-शहरी विभाजन नहीं बल्कि गांव से शहरों की ओर एक अग्रचालन श्रेणी-व्यवस्था विद्यमान होती है। प्रायः इनके मध्य स्पष्ट

सीमा का निर्धारण करना संभव नहीं हो पाता जिससे कि कहा जा सके कि - 'एक शहर कहां समाप्त होता है और ग्रामीण क्षेत्र कहां से प्रारम्भ' ।

इस बारे में सर्वाधिक प्रभावी अध्ययन रॉबर्ट रेडीफील्ड (1930) के द्वारा किया गया था। उन्होंने एक सातत्य विकसित किया - जो छोटे जनजातीय गाँव (लोक) से शुरू होकर बड़े शहरों (शहरी) तक विस्तारित था। उनके शब्दों में - "अधिक शहरी होने का अर्थ था, अधिक धर्मनिरपेक्ष, व्यष्टिवादी होना एवं श्रम का अधिक विभाजन विद्यमान होना था। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की अधिक शहरी या कम शहरी के रूप में श्रेणी-व्यवस्थाएं विद्यमान है।

'ग्रामीण शहरी सातत्यक' की संकल्पना रैडफील्ड की "लोक- शहरी सातत्यक" की संकल्पना के स्वरूपानुसार बनाई गई है, जो 1930 के दशक के प्रारंभ युकाटन शहर में हुए अध्ययन पर आधारित है। उन्होंने जिटास नगर, मेरीडा शहर, छान कॉम के माया कृषक गाँव एवं टूसिक की जनजाती पल्ली का अध्ययन किया। रैडफील्ड ने "लोक समाज का वर्णन इस प्रकार किया है – ".....छोटा, अलग-थलग, निरक्षर और समजातीय समूह एकता के सुदृढ़ भाव वाला। रहन-सहन के तरीके उस संबद्ध प्रणाली में परंपराबद्ध हैं जिसे हम "संस्कृति" कहते हैं। व्यवहार पारम्परिक, सहज और वैयक्तिक है नातेदारी, इसके संबंध और संस्थाएं अनुभव की हैं प्रतीक, आदर्श और कौटुंबिक समूह क्रिया की इकाई है। धर्मनिरपेक्ष पर पवित्रता हावी है, और अर्थव्यवस्था बाज़ार से संबंधित होने की बजाय प्रस्थिति की द्योतक है।"

लोकसमाज में प्राथमिक उपकरणों की तुलना में द्वितीयक व तृतीयक उपकरण तुलनात्मक रूप से कम पाए जाते हैं। अन्य सभी से समूह आर्थिक रूप आत्मनिर्भर होता है एवं यहां श्रम का विभाजन अधिक नहीं है। शहरी समाज को लोक समाज के विपरीत समझा जाता है। लोक समाज और शहरी समाज की अवधारणाओं को रैडफील्ड (1930) ने जिस रूप में परिभाषित किया है वे मूलतः आदर्श प्रारूप हैं। इनका वास्तव में भले ही अस्तित्व न हों लेकिन किसी समाज के 'लोक रूप' अथवा 'शहरी रूप' का निर्धारण करने के उद्देश्य से समाज की तुलना करने के लिए, निर्देश चिन्हों के रूप में कार्य करते हैं। अर्थात वास्तव में सभी समाज में इन दो आदर्श प्ररूपों के मध्य एक सातत्यक विभिन्न स्तरों पर विद्यमान होता है। रैडफील्ड (1930) कृषक समाज का उदाहरण लोक शहरी सातत्यक के एक ऐसे बिन्दु के रूप में देते हैं, जिसने शहरी विशेषताओं को उच्च मात्रा में आत्मसात कर लिया है, परंतु आज भी अधिकांश लोक समाज अपनी विशेषताओं को बनाए हुए है।

रेडफील्ड के अनुसार कृषक समाज - "लोक-समाज एवं सभ्यता की स्थिति को समान संतुलन में अधिक नजदीकी से वर्णन करते हुए वह बताते है कि कृषक समाज वह समाज है जिसमें नैतिक व्यवस्था अभी भी व्याप्त है; जो प्राचीन समाजों में व्याप्त पायी जाती थी, परंतु अब यह विकसित उपकरणों, औपचारिक प्रशासनिक संस्थाओं और व्यापार के साथ स्थिर संबंध बनाए रखता है। "कृषक गाँव एक घर है. एक स्थिर संरचना, जिसमें मानवजाति ऐतिहासिक मार्ग पर कल्पित ध्रुवताओं के बीच चलती है"।

भारतीय संदर्भ में, रैडफील्ड (1930) ने एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की थी - "भारत और लेटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों की तरह सभ्यता में जहाँ जनजातीय जीवन भी विद्यमान रहता है, हम स्तरों, जनजातीय किसान और शहरीकृत अथवा जागीर संबंधी संरचना को पहचान सकते हैं। यह संरचना पूरे सभ्य समाज को बनाने वाले घटक के रूप में देखी जा सकती है, और हम परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया का वर्णन कर सकते है जहाँ एक विशिष्ट समुदाय या व्यक्ति एक स्तर से अगले में चला जाता है"।

भारत में शहरीकरण पर किए अपने अध्ययन में रामचंद्रन (2007) ने भी ग्रामीण-शहरी सातत्यक की संकल्पना की समीक्षा की, जो बस्तियों के आकृति-विज्ञान से शुरू की गई

और विमर्श किया गया कि क्या बड़ी बस्तियां, छोटी बस्तियों से भिन्न हैं और यदि हैं तो किस प्रकार भिन्न हैं? बस्तियों का आकार चाहे जो हो ये वे स्थान हैं - जहां लोग एक दूसरे से मिलते-जुलते है। इसके अलावा, छोटी व बड़ी बस्तियों में सामाजिक-संरचना के संदर्भ में विशेष अंतर नहीं होता। उदाहरणस्वरूप भारत में, ग्रामीण व शहरों दोनों में धर्म नृजातीय अथवा भाषायी मूलों, जाति अथवा वर्ण के आधार पर सामाजिक-स्तरीकरण दिखाई देता है। वस्तुतः शहर और गाँव परिवार के आकार और परिवार प्रणालियों के प्रकार - संयुक्त, विस्तारित या मूल परिवारों के संबंध में एक जैसे होते हैं। उनकी बस्तियों का आकार चाहे जो भी हो, उनके विवाह नियम, सामाजिक रीतियां आदि एक जैसे होते हैं। यहां तक कि गांव और शहरों में जनांकिकीय लक्षणों, जैसे प्रत्येक घर में बच्चों की संख्या व परिवार के आकार आदि में भी अधिक अंतर नहीं पाया जाता है। शहरों के बहुत से निवासी भी शहरी सुख सुविधाओं जैसे पाइपों द्वारा जल आपूर्ति, नाली व्यवस्था एवं कूड़े के सही निपटान आदि से वंचित रहना पड़ता है एवं वे अधिकांशतः ग्रामीणों के समान रहते हैं। भारतीय शहरों और गाँवों की गन्दी बस्तियों में बनी झुग्गीयाँ आदि कच्चे घर काफी कुछ एक समान होते हैं। इसके इतर छोटी बस्तियाँ आकार में बढ़ी हो कर कभी न कभी शहर का रूप ले लेती हैं। इसलिए, गाँवों एवं शहरों के बीच भेदभाव निरर्थक है क्योंकि "बस्तियाँ एक सातत्यक के अंतर्गत आती हैं और उनमें कोई विशिष्ट विभाजक रेखा नहीं होती"।

विकसित देशों में, जिनकी 80 प्रतिशत आबादी शहरी है - गांव और शहरों के मध्य अंतर लगभग समाप्त हो चूका होता है। बाकी के 20 प्रतिशत लोगों में से जो ग्रामीण बस्तियों में रहते हैं, उनमें अधिकांश लोग कृषि से सम्बंधित कार्य नहीं करते, क्योंकि कार्यबल का मात्र 5 प्रतिशत ही खेती में संलग्न होता है। ग्रामीण क्षेत्रों के फार्म-हाउसों में शहरों के जैसी ही आधुनिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध होती हैं - जैसे नलों द्वारा जल आपूर्ति, टेलीफोन, बिजली, इंटरनेट आदि।

भारत में अगम्य जनजातीय क्षेत्र, जो परिवहन और संचार के विकास से अभी भी अनभिज्ञ है, अब ग्रामीण क्षेत्रों के संपर्क में आ गए हैं एवं गांव शहरों के संपर्क में आ गए हैं। शिक्षा के प्रसार, सरकारी गतिविधियों व बाजार के अंतःभेदन एवं परस्पर आवागमन के द्वारा इन क्षेत्रों में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। जिनमें शहरी व ग्रामीण दोनों का प्रभाव स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार, ग्रामीण-शहरी सातत्यक के संबंध में कहा जा सकता है कि यह सामाजिक परिवर्तन और शहरीकरण के साथ अधिक प्रभावी एवं स्पष्ट होता जा रहा है।

सारांश - प्रस्तुत शोधपत्र में ग्रामीण एवं शहरी समाज की चर्चा की गयी है एवं उनके मध्य विषमता को भी जानने का प्रयास किया गया एवं यह पाया गया कि ग्रामीण नगरीय सातत्य एक सम्मिश्र प्रक्रिया है। इसे परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारक के रूप में वर्णित किया जाता है। गांव और शहर सदैव भिन्नता अथवा द्विभाषीयता प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि वे सातत्य अर्थात निरंतरता को दर्शाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची -

- देसाई, ए.आर. (1969), रूरल सोशोलोजी इन इंडिया, *पॉपूलर प्रकाशन,* मुम्बई
- बटलर,एम.ए. एवं बील, सी.ए. (1994), रूरल अर्बन कंटीनम कोड्स फॉर मेट्रोपोलिटन एंड नॉन मेट्रोपोलिटन कन्ट्रीज, 1993, *एग्रीकल्चर एंड रूरल इकॉनोमी डिवीज़न, इकॉनोमिक रिसर्च सीर्विसेस,* यूनाइटेड स्टेट्स डिपार्टमेंट ऑफ़ एग्रीकल्चर, एजीईएस 9425.
- बोरगाह एवं बोरगहा (सं.) (1992), *ऍनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियोंलोजी,* भाग 4, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयॉर्क, पृ. 2195-2211
- रामचंद्रन, आर. (2007) (संपा), अर्बनाइजेशन इन इंडिया सोशियोंलोजिकल कन्ट्रब्यूशन्स, *सेज पब्लिकेशन,* नई दिल्ली।

- लोवे,जी.डी. एवं पिन्हे, टी.के. (1982), रूरल अर्बन डिफरेंसेस इन सपोर्ट फॉर एनवायर्नमेंटल प्रोटेक्शन, *रूरल सोशियोलॉजी* 47:114-28.
- सिल्स डी. (संपा.) (1972), इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइसिज, भाग 11 और 12, *मैकेमिलन कंपनी और फ्री प्रेस,* न्यूयॉर्क, पृ. 580588
- सौरोकिन एवं जिम्मेरमान (1929), प्रिन्सिपल्स ऑफ रूरल-अर्बन सोशोलोजी, *हेनरी होल्ट एंड कम्पनी,* न्यूयॉर्क।
- हेंडी, जे.सी. (1969), रूरल अर्बन डिफरेंसेस रेफ्लेक्टेड इन आउटडोर रिक्रिएशन पार्टिसिपेशन, *जर्नल ऑफ़ लेज़र रिसर्च* 1:333-41.